Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 7.384
Volume - 8, Issue - 3, March - 2025

DOIs:10.2018/SS/202503015 --:-- Research Paper / Article / Review

वेदों में वर्णित प्रमुख स्त्री पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण

डॉ. पूजा
संस्कृत विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्युट्, दयालबाग, आगरा
Email - chaudharypooja870@gmail.com

सारांश :

वेद प्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपयर्यः।
वेदो नारायणः साक्षात् स्वयंभूरिति शुश्रुम।।[1]

अर्थात् वेदों ने जिन कर्मों का विधान किया है, वे धर्म हैं और जिनका निषेध किया है, वे अधर्म हैं। वेद स्वयं भगवान् के स्वरूप हैं। वेद विश्व का प्राचीनतम वाङ्य है। भारत की सनातन मान्यताओं के अनुसार वेद अपौरुषेय हैं। शास्त्रों में वेद का धर्म के मूलरूप में आख्यान किया गया है **"वेदोऽखिलो धर्ममूलं"।"**[1] वेद मानवमात्र को मनुष्य बनने के लिये आज्ञा देते हैं।
वेद हमें संवेदना से परिपूर्ण हृदय से युक्त होने और मननशील मनुष्य बनने की ओर उत्प्रेरित करते हैं। **वाचस्पति गैरोला**[1] ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि "हमारी सारी क्रियाओं का मूल वेद ही है। हिन्दू धर्म में वेदों को ईश्वरीय आदेशों के रूप में शिरोधार्य माना गया है। वेद हिन्दू जाति के प्राणसर्वस्व है। वेदों का प्रधान विषय यद्यपि ज्ञान, कर्म और उपासना की विवेचन करना है किन्तु हिन्दू जाति का विश्वकोश होने के नाते उनमें हिन्दू जाति के धार्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक और आध्यात्मिक उन्नति का विस्तृत विवेचन और साथ ही मानवजाति के विकास की क्रमबद्ध कथा भी वर्णित है।" इसीलिये **'सर्वज्ञानमयो हि सः'**[1] कहकर मनु ने वेदों को सभी विद्याओं का स्रोत माना है।' वह कहते है कि वेदशास्त्र के वास्तविक अर्थ को जानने वाला जिस किसी आश्रम में रहता हुआ इसी लोक में ब्रह्मभाव के लिये समर्थ होता है। शतपथ ब्राह्मण में भी वेदों के अध्ययन की महत्ता का वर्णन किया गया है। अतः आर्यसभ्यता और साहित्य पर वेदों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। वेदों में वर्णाश्रमधर्म, गार्हस्थ्य-सूत्र, जीवन-शुचिता, विवाह-संस्कार, आत्मगुणों का महत्त्व, आत्मोन्नति के उपाय, जीवन-मुक्ति के उपाय, पापकर्मों-पुण्यकर्मों का जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों, पारिवारिक सदस्यों के अन्तर्सम्बन्धों, तपोबल का सामर्थ्य, आचार शिक्षा तथा पारिवारिक और सामाजिक जीवन में स्त्रियों की भूमिका इत्यादि पर प्रकाश डाला गया है।

1. प्रस्तावना :

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं सीतिबन्धतम्।।[i]

मनुस्मृति के वचनानुसार स्त्री सृष्टि की संयोजिका है जो मायारूप जगत् में सभी शुभाशुभ वृत्ति को उत्पन्न करती है। स्त्री और पुरुष दोनों ही आधी-आधी सृष्टि है। इनके मेल से ही पूर्ण सृष्टि का निर्माण होता है। प्रायः धार्मिक कार्यकलापों

ISSN(o): 2581-6241
Impact Factor: 7.384

में गृहपति पत्नी के साहचर्य से कार्यों को संपादित करके ही उनकी पूर्णता और तदनुसार फल प्राप्त करता है। स्त्री और पुरुष का यही सौहार्दपूर्ण संबंध इस लोक में कौटुम्बिक रमणीयता, सामाजिक शान्ति तथा समरसता के द्वारा मानव के चित्त को आह्लादित और श्रेष्ठ कार्यों के लिये उत्प्रेरित करता है। स्त्री के श्रेष्ठ चरित्र से ही परिवार, समाज और राष्ट्र के चरित्र निर्माण का शुभारम्भ होता है। उसके द्वारा दिये गये संस्कारों पर ही समस्त मानव समुदाय की सफलता निर्भर करती है। क्योंकि स्त्री ही संस्कृति की संबंधिका एवं संरक्षिका है। यह संस्कृति की ऐसी जीवन्त प्रतिमा है जिसे सच्चिदानंद सर्वेश्वर ने स्वयं अपनी सृजनशक्ति से रचा है किंतु इस सत्य से भलीभांति परिचित होने पर भी भारतीय समाज में पुरुषसत्ता का ही वर्चस्व रहा है। वैदिक कालक्रम से वर्तमान समय तक इस कथा की ही पुनरावृत्ति मात्र होती रही है। ऐसे में समाज जहाँ मर्यादा पुरुषोतम श्रीराम को आदर्श स्वीकार करता है यहीं सीता को पातिव्रत्यधर्म की पराकाष्ठा पर स्थापित करता है किंतु सत्य तो यह है कि प्रभु श्रीराम के समान ही त्यागी, तपस्विनी, सत्यगुणसम्पन्ना, सर्वशुभलक्षणयुक्ता जनकनन्दिनी सीता के आदर्श चरित्र से संयुक्त होकर ही राम का चरित्र अपनी पूर्णता एवं चरितार्थता को प्राप्त कर सका है। मात्र सीता ही नहीं उनके ही समान समस्त सद्गुणों से सम्पन्न सती साध्वी स्त्रियां पुरुषप्रधान समाज में अपने चारित्रिक उत्तमोतम गुणों से वैदिक काल से निरन्तर अपना वर्चस्व स्थापित करती आ रही है।

यह ध्रुव सत्य है कि सृष्टि के प्रारंभ से ही स्त्री और पुरुष परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रमुख अंग रहे हैं। जीवन के साथ ही साथ साहित्य में भी इनके संबंधों का विश्लेषण होता रहा है। भारतीय साहित्य में ऐसे अनेक ग्रन्थों की उपलब्धता है जिनमें इनके संबंधों पर विचार-विमर्श हुआ है परन्तु यदि निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाये तो पुरुष प्रधान साहित्य का आधिक्य ही साहित्यजगत् में दृष्टिगोचर होता है। वेद से लेकर अधुनातन संस्कृत साहित्य का समग्र रूप से पर्यालोचन किया जाये तो स्त्री पात्रों पर पुरुष पात्रो की अपेक्षा लेखकों का ध्यान कम ही गया है। स्वयं वेद में भी ऋषिकाओं और देवियों की अपेक्षा ऋषियों और देवताओं का स्वरूप ही प्रमुख रूप से वर्णित है।

तदनुरुप प्रस्तुत शोधपत्र में वेद-वर्णित प्रमुख स्त्री पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

वैदिक समाज में स्त्रियों की सम्मानजनक स्थिति रही है। उन्होंने अपनी प्रखर बुद्धि और सात्विक प्रवृत्ति से ऋषिका पद को प्राप्त किया तथा देवता पद को भी प्रतिष्ठित किया है। उन्होंने अपनी कर्तव्यनिष्ठा, संयम, समर्पण और तपोबल से आर्यसंस्कृति को गौरवान्वित किया है तथा संसार में अक्षुण्ण कीर्ति और सम्मान अर्जित किया है। संस्कृति के उन्नयन में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। ऐसी विदुषी स्त्रियों में अपाला, लोपामुद्रा, रोमशा, उर्वशी,शशीयसी, विश्ववारा, गोधा, घोषा इत्यादि का नाम उल्लेखनीय है। ऋग्वेद में वर्णित 'यमी' का चरित्र अपवाद है और त्याज्य भी है।

2. विषयवस्तु-

- **लोपामुद्रा**

वैदिक साहित्य में जहाँ ऋषियों का गौरवपूर्ण स्थान रहा है वहीं ऋषिकाओं का भी कम गरिमापूर्ण स्थान नहीं रहा प्रत्युत् बढ़ा-चढ़ा ही रहा है। उसी का एक ज्वलंत उदाहरण है- 'ब्रह्मवादिनी लोपामुद्रा'। यह ऋषि अगस्त्य की पत्नी थी।[ii] जिन्होंने अपने तप और जान के प्रभाव से आर्यजगत् में मन्त्रदर्शिका ऋषिका बनकर स्त्रियों के मस्तक को ऊंचा किया। ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के कुछ मन्त्रों का ऋषित्व इन्हें प्राप्त हुआ है। इन मन्त्रों में ऋषि दम्पती लोपामुद्रा एवं अगस्त्य के मध्य सुसंतति उत्पन्न करने की आवश्यकता एवं मर्यादाओं के विषय में संवाद वर्णित है। लोपामुद्रा कहती है "हम विगत जीवन के अनेक वर्षों में उषाकाल सहित दिन-रात श्रमनिष्ठ (तपस्यारत) रहे हैं। वृद्धावस्था शरीरों की क्षमताओं को क्षीण कर देती है इसीलिये श्रेष्ठ सन्तान की प्राप्ति की दृष्टि से समर्थ पुरुष ही पत्नियों के समीप जायें। (यहाँ प्रकारान्तर से व्यसन के रूप में पत्नियों के समीप जाने का निषेध है) पूर्वकाल में जो सत्य की साधना में प्रवृत्त ऋषिस्तर के व्यक्ति हुये हैं, जो देवों के साथ (उनके समकक्ष) सत्य बोलते थे। उन्होंने भी उपयुक्त समय पर सन्तानोत्पादन का

कार्य किया, अन्त तक ब्रहाचर्य आश्रम में ही नहीं रहे। (श्रेष्ठ सन्तान की प्राप्ति की दृष्टि से) उत्न श्रेष्ठ-समर्थ पुरुषों को पत्नियाँ उपलब्ध करायी गयी।" यथोक्तम्-

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ।।[iii]

ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ।।"[iv]

तत्पश्चात् ऋषि अगस्त्य, लोपामुद्रा के विचारों से अपनी सहमति का भाव प्रकट करते ह्ये कहते हैं कि "हमारा अब तक का तप व्यर्थ नहीं गया है। देवता श्रेष्ठ प्रवृत्तियों के कारण हमारी रक्षा करते हैं, अतः हमने विश्व की (जीवन में आने वाली) सारी स्पर्धाएँ जीत ली है। हम दम्पती यदि अब उचित ढंग से सन्तान उत्पन्न करें, तो इस जीवन में सौ वर्षों तक संग्राम (जीवन की चुनौतियों) में विजयी होंगे।" वह आगे लोपामुद्रा की प्रशंसा करते ह्ये कहते हैं- **नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।**
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम्।।"[v]

अर्थात् लोपामुद्रा नदी के प्रवाह को सब ओर से रोक लेने वाले संयम से उत्पन्न शक्ति को सन्तानप्राप्ति की ओर प्रेरित करती है। यह भाव इस (शारीरिक स्वभाव) अथवा उस (कर्तव्यबुद्धि) या किसी अन्य कारण से और अधिक बढ़ता है। श्वास का संयम रखने वाले समर्थ धीर पुरुष अधीरता को नियन्त्रण में रखते हैं। ऋषियों ने परिपक्व शारीरिक एवं मानसिक स्थिति बन जाने पर ही दम्पती को आवश्यकतानुरूप सन्तति को जन्म देने का निर्देश दिया है।

उपर्युक्त संवाद लोपामुद्रा के तपोमय, संयमशील और मर्यादित जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है। यह उनके पारस्परिक प्रेमभाव तथा आदरणीय दृष्टि का सूचक है। बृहद्देवता में उल्लेख है कि "जब वह ऋतुस्नान से निवृत हो चुकी तब अपनी यशस्विनी पत्नी लोपामुद्रा से ऋषि अगस्त्य ने समागम की इच्छा से वार्ता आरम्भ की तब इन दोनों के मध्य ह्ये संवाद को इनके एक शिष्य ने अपने तपोबल से श्रवण कर लिया था और इस पापकर्म के लिये शिष्य ने इन दोनों से क्षमायाचना की थी तब लोपामुद्रा और ऋषि अगस्त्य ने उसकी प्रशंसा और आलिङ्गन करते ह्ये उसके मस्तक का चुम्बन किया और उसे क्षमा कर दिया। यथोक्तम्

प्रशस्य तं परिष्वज्य गुरु मूर्ध्न्यवजध्रतुः ।
स्मित्वैनमाहतुश्वोभाव अनागा असि पुत्रक।।[vi]

इससे लोपामुद्रा की विनम्रता तथा क्षमाशीलतारूपी गुणों का दर्शन होता है। मर्यादित जीवन का जो चित्रण यहाँ उल्लिखित हुआ है, वह वर्तमानकाल में भी उपादेय है। लोपामुद्रा के चरित्र से यह शिक्षा मिलती है कि हमें विनम्र और क्षमाशील रहते ह्ये इन्द्रियसंयमपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिये।

- **रोमशा**

ब्रह्मवादिनी रोमशा का मन्त्रद्रष्टा ऋषिकाओं में महत्वपूर्ण स्थान है।" ये ऋग्वेद में देवता के रूप में भी उल्लिखित है।[vii] इन्होंने अपनी प्रज्ञा और तपोबल के सामर्थ्य से यह पद प्राप्त कर स्त्रियों के गौरव को प्रतिष्ठित किया है। ये बृहस्पति की पुत्री तथा राजा स्वनय भावयव्य की पत्नी है। जो पतिव्रता स्त्री की भॉति अपने पति का अनुगमन करती थी।" राजा स्वनय भावयव्य स्वयं ही इनकी प्रशंसा करते ह्ये कहते हैं-

आगधिता परिगधिता या कशीकेव जंगहे।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता।"[viii]

अर्थात् "मेरी सहधर्मिणी मेरे लिये अनेक ऐश्वर्य और भोग्य पदार्थ उपलब्ध कराती है। यह सदा साथ-साथ रहने वाली, गुणों को धारण करने वाली मेरी सहस्वामिनी है।" राजा भावयव्य के रोमशा के प्रति कहे गये ये प्रशंसावचन ही रोमशा के चरित्र को व्याख्यायित कर रहे हैं तथा साथ ही पत्नी द्वारा किये गये कार्यों के प्रति सम्मानित दृष्टि के भी सूचक हैं। ऐतेरेय आरण्यक में कहा गया है कि 'पत्नी को प्राप्त करके ही मनुष्य पूर्ण होता है" (पुरुषों जायां वित्त्वा कृत्स्नतरम् इवात्मानं मन्यते। सायण भाष्य में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है **"यस्मान्मेलनेन मिथुनत्वं प्रशस्तं तस्मात् लोकेऽपि पुरुषः ब्रह्मचारी विवाहेन 'जायां' लब्ध्या अतिशयेन सम्पूर्णो जातीऽस्मि इत्येवं परितुष्यति।"**[ix]

बृहदेवता में भी रोमशा के बारे में उल्लेख है कि जब इन्द्र अपने सखा स्वनय भावयव्य को देखने की इच्छा से उनके यहाँ आये तो इन्द्र ने रोमशा से मित्रभाव से कहा "रोमाणि ते सन्ति न सन्ति राज्ञि" अर्थात् ' हे रानी। तुम्हें रोम है अथवा नहीं है। तब उसने बालसुलभ [x]भाव से अपने पति को सम्बोधित करके कहा कि "आप मेरे पास आकर बार-बार मेरा स्पर्श करें (प्रेरणा लें), मेरे कार्यों को अन्यथा न लें। जिस प्रकार गन्धार की भेड रोमों से भरी होती है उसी प्रकार मैं गुणों से युक्त-प्रौढ हूँ।" उपर्युक्त वचनों से स्पष्ट है कि रोमशा एक विदुषी स्त्री, एक पतिव्रता पत्नी थी तथा स्वधर्म पालन में तत्पर थी।

- **शशीयसी**

ये राजा तरन्त् की धर्मपत्नी थीं जिन्होंने अपनी तपस्या के प्रभाव से देवत्व को प्राप्त किया तथा आर्यजाति की स्त्रियों के सम्मान में अभिवृद्धि की। ऋषि अर्चनानस् के पुत्र श्यावाश्व" ने इनकी स्तुति की थी जिससे प्रसन्न होकर शशीयसी ने उसे प्रचुर मात्रा में भेडे, बकरियों, गौएँ और अश्व प्रदान कर उसका मार्ग प्रशस्त किया **(सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम्। श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ।।)**[xi] इससे प्रसन्न होकर श्यावाश्व ने सर्वदा प्रमुदित रहने वाली शशीयसी देवी के लिये प्रशंसायुक्त वचन कहे कि "ये देवी प्रताडितों को जानती है, प्यासों को भी जानती है, धन की कामना वालों को जानती है और वे चिरन्तन देवपूजा में अपने चित को लगाती हैं। ये राजा तरन्त् के समान ही दानशीला है।" यथोक्तम्-

वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम्।
देवत्रा कृणुते मनः ।। स वैरदेय इत्समः।"[xii]

श्यावाश्ब के इन वचनों से ज्ञात होता है कि ये सदैव प्रसन्नचित्त रहती थी, याचकों को अभिलषित पदार्थ प्रदान कर पुण्य कर्म किया करती थी। इनमें परोपकार की भावना विद्यमान थी। परोपकार के महत्व को प्रतिपादित करते हुये कहा भी गया है-

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीड़नम्।।"[xiii]

- **विश्ववारा आत्रेयी**

वैदिक ऋषिकाओं में अत्रिगोत्रोत्पपन्ना तपोबलसमन्विता विश्ववारा आत्रेयी का नाम प्रख्यात है। ऋग्वेद और यजुर्वेद" के अनेक मन्त्र इन्हीं के द्वारा द्रष्ट हैं। मनुस्मृति में 'आत्रेयी' शब्द का अर्थ बताते हुये कहा गया है कि "जन्म से लेकर मन्त्रपूर्वक संस्कारों से संस्कृत स्त्री या गर्भिणी को विद्वज्जन आत्रेयी कहते हैं।" यथोक्तम्

जन्मप्रभृतिसंस्कारैः संस्कृता मन्त्रवाचया।
गर्भिणी त्वथवा स्यात्तामात्रेयी च विदुर्बुधाः।।[xiv]

इन्होंने अग्निदेव की स्तुति करते हुये उनसे दाम्पत्य सम्बन्ध को सुखी तथा सुनियमित करने तथा उनसे शत्रुता करने वाली की महिमा को च्युत करने की प्रार्थना की है। यथोक्तम् - **सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि।"**[xv]

इससे प्रतिपादित होता है कि दाम्पत्य जीवन का अत्यधिक महत्व है। आज भी विवाह के समय वर-वधू को यही आशीर्वाद प्रदान किया जाता है कि तुम्हारा दाम्पत्य जीवन सफल हो। तैतिरीय ब्राह्मण में भी उक्त कथन की पुष्टि की गयी है। वहाँ सप्तपदी के महत्व को प्रतिपादित करते हुये कहा गया है कि "पुरुष-स्त्री दोनों ही अपने सम्बन्धों का निर्वाह करें. दोनों में से कोई भी सम्बन्ध विच्छेद न करे।"

यथोक्तम् सप्तपदास्त्वया सह संचारवन्ति सप्तसंख्यकानि पदानि येषामस्माकं ते वयं तव सखायोऽभूम संपन्नास्ते त्वदीयं सख्यं गमेयं प्राप्नुयाम्। ते त्वदीयात्सख्यान्मा योषमहं पृथग्भूतो मा भूवम्। में मदीयात्सख्यान्मा योष्ठास्त्वमपि पृथग्भूतो मा भव।"[xvi]

- **अपाला**

वैदिक ग्रन्थों में ब्रह्मवादिनी अपाला की मंत्रद्रष्ही ऋषिका के रूप में प्रतिष्ठा है। ये अत्रि मुनि की तपस्विनी कन्या थी जो चर्मरोग से ग्रस्त थी इस कारण इनके पति ने भी इनका त्याग कर दिया था। ये तपोबल से सभी के मनोभावों को जानने में समर्थ थी।" इन्होंने पिता के घर रहते हुये ही अपनी स्तुतियों से इन्द्रदेव को प्रसन्न करके वरस्वरूप अपने पिता के मस्तिष्क, उर्वरा (भूमि/मनोभूमि) तथा स्वयं के उदरस्थल को विशेष प्रयोजनों के लिए श्रेष्ठ बनाने की प्रार्थना की थी। यथोक्तम्-
इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय।
शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे।।"[xvii]
तत्पश्चात् इन्द्रदेव ने इनकी स्तुतियों से प्रसन्न होकर इनकी त्वचा को सूर्यदेव के तेज से युक्त बना दिया। यथोक्तम्-
खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचम्।।"[xviii]

बृहदेवता में उल्लेख है कि इन्द्र ने गाड़ी और जुएँ के बीच के छिद्र से उसे प्रक्षिप्त करते हुये इनकी त्वचा को तीन बार बाहर खींचा और उन्हें सुन्दर शरीर वाला बना दिया। तीन बार खींचने के कारण उसकी प्रथम अपहृत त्वचा शल्यक बन गयी किन्तु दूसरी गौधा (घड़ियाल) और अन्तिम कृकलास (नेवला) बन गयी। यथोक्तम्-
तस्यास्त्वगपहता या पूर्वा सा शल्यकोऽभवत्।
उत्तरा त्वभवद्वौधा कृकलासस्त्वगुत्तमा।।[xix]

उपर्युक्त कथनों से यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि अपाला के जीवन के कुछ वर्ष शारीरिक व्याधि के कारण कष्टप्रद रहे है तथापि धैर्यच्युत हुये बिना ये निरन्तर तपस्यारत रही तथा उन्होंने अपनी तपस्या की शक्ति से स्वयं के तथा पिता के भी उन्नत जीवन का मार्ग प्रशस्त किया।

❖ यमी वैवस्वती

ऋग्वेद में इनका नाम ऋषिका और देवला दोनों रूपों में निर्दिष्ट है। ये विवस्वान् तथा सरण्यू की पुत्री तथा यम की सहोदरा बहिन हैं। इन्हें अप् से उत्पन्न 'योषा' और 'गन्धर्व की संतान' भी कहा गया है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के सूक्त में यम और यमी का पारस्परिक संवाद वर्णित है जिसमें यमी, यम के संयोग से सन्तानोत्पत्ति की कामना व्यक्त करते हुये कहती हैं कि- **ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरु चिदर्णवं जगन्वान्।**
पितुर्नपातमा दधीत वेध अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ।[xx]

अर्थात् 'है यमदेव। विशाल समुद्र के एकान्त प्रदेश में सख्य भाव या मित्र रूप से आपसे मैं मिलना चाहती हूँ। विधाता की इच्छा है कि नौका के समान संसार-सागर में तैरने के लिये, पिता के नाती सदृश श्रेष्ठ सन्तति प्रजननार्थ हम परस्पर संगत हो।" किन्तु यम, यमी के प्रस्ताव से सहमत नहीं होते क्योंकि यमी उनकी सहोदरा बहिन है। तब यमी अपने इस कार्य के औचित्य को सिद्ध करने के प्रयत्नस्वरूप अनेक तर्क करती हैं। वह कहती हैं कि
यद्यपि मनुष्यों में ऐसा संयोग त्याज्य है, तो भी देवशक्तियाँ इस प्रकार के संसर्ग की इच्छुक होती हैं। सर्वप्रेरक और सर्वव्यापी उत्पादनकर्ता त्वष्टा देव ने हमें गर्भ में ही दम्पति के रूप में सम्बद्ध किया है। हे यम। वह कैसा भाई, जिसके रहते बहिन अनाथ हो जाय? **(उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्यजसं मर्त्यस्य। गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः। कि भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निऋतिर्निगच्छात्।।**[xxi]

किन्तु यम उसके द्वारा प्रस्तुत किये गये तर्कों को निरस्त करके उसे मर्यादा पालन के लिये प्रेरित करते हुये कहते हैं कि "हे यमी। मैं शारीरिक सम्बन्धों की इच्छा नहीं करता, क्योंकि भ्राता और भगिनी का सम्बन्ध पवित्र है, आप मेरी आकांक्षा त्यागकर अन्य पुरुष के साथ ही प्रसन्नचित्त हो। भाई होने के नाते आपका निवेदन मुझे कदापि स्वीकार्य नहीं।" यथोक्तम्-

न या उ ते तन्वा तन्वं सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्। अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत्।।"[xxii]

उपर्युक्त संवाद से यह ज्ञात होता है कि भाई और बहिन का सम्बन्ध अत्यधिक पवित्र होता है तथा प्रत्येक परिस्थिति में इस सम्बन्ध की मर्यादा को बनाये रखना चाहिये। किसी परिस्थिति विशेष में स्त्री और पुरुष के मन में अनैतिक कार्यों को करने की इच्छा जाग्रत हो सकती है अतः मर्यादा के संरक्षण के लिये ही संभवतः मनुस्मृतिकार ने अपने ग्रन्थ में कहा
माता स्वसा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।।[xxiii]
अर्थात् पुरुष माता, बहिन तथा पुत्री के साथ कभी एकान्त में न रहे क्योंकि बलवान् इन्द्रिय समूह विद्वान को भी अपने वश में कर लेता है। यम-यमी का ये संवाद अथर्ववेद में भी वर्णित है।

❖ घोषा

घोषा' कक्षीवान् ऋषि की ब्रह्मवादिनी कन्या थी। इन्होंने तपश्चर्या द्वारा ऋषिका पद को प्राप्त किया था। बृहदेवता ग्रन्थ में घोषा' की कथा वर्णित है। इसमें बताया गया है कि घोषा किसी रोग से अपंग हो गयी थी। यह साठ वर्षों तक अपने पिता के गृह में रही तब उसने सोचा कि बिना पति अथवा पुत्र के मैं व्यर्थ ही जरावस्था को प्राप्त हो गयी हूँ अतः ऐसा चिन्तन करके उसने पुनः रूप और सौभाग्य प्राप्त करने के लिए अश्विनीकुमारों से प्रार्थना की। यथोक्तम्-

आसीत्काक्षीवती घोषा पापरोगेण दुर्भगा। उवास षष्टि वर्षाणि पितुरेव गृहे पुरा।। आतस्थे महती चिन्तां न पुत्रो न पतिर्मम। जरां प्राप्ता मुधातस्मात् प्रपद्येऽहं शुभस्पति।। रुपवता च सौभाग्यम् अहं तस्य सुता यदि।"[xxiv]

'घोषा अश्विनीकुमारी से कहती है कि "जैसे पिता, पुत्र को मार्गदर्शन देते हैं, वैसे ही आप मुझे परामर्श है। मेरा कोई सहायक बन्धु नहीं। मैं ज्ञान से रहित, परिवार व परिजनों से रहित तथा अल्पज्ञा हूँ। मेरे दुर्गतिग्रस्त होने से पूर्व ही आप दोनों मुझे इस दुर्दशा से निकालें। मैं, पत्नी से प्रेम करने वाले स्वस्थ-बलिष्ठ पतिगृह को सुशोभित करु तथा मेरे पतिगृह को ऐश्वर्य एवं संतान आदि से आप परिपूर्ण करें, पतिगृह-गमनमार्ग में यदि कोई दुष्ट, विघ्न उपस्थित करे तो उसका निवारण करें तया हमारे पुत्र-पौत्र आदि संताने सदैव सुख- सौभाग्य से युक्त हों।" यथोक्तम्- **इयं वामह्वे शृणुतं में अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम्।**
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम्।।[xxv]
प्रियोस्त्रियस्य वृषभस्य रेतिनो गृहं गमेमाश्विना तदुश्मसि ।।
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे।
कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्थती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हलम्।।"[xxvi]

उसकी स्तुतियों से प्रसन्न होकर अश्विनीकुमारी ने उसकी समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण की।

यहाँ घोषा का चरित्र एक ऐसी स्त्री के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है जो शारीरिक रूप से अक्षम होते हुये भी अपने सौभाग्य की अभिवृद्धि के लिये प्रयत्नशील है, जिसे वह अपनी दृढ इच्छा शक्ति, उत्साह, समर्पण भाव, आशावादिता और प्रयासों की निरन्तरता से प्राप्त कर लेती है।

- **विश्पला**

ऋग्वेद के दशम मण्डल में विश्वला नामक स्त्री का उल्लेख है जिसने युद्ध में भाग लिया था और उस समय इनका एक पैर कट गया था जिन्हें अश्विनीकुमारों ने लोहे की जंघा प्रत्यारोपित करके पुनः चलने के योग्य बनाया था। **(युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः)**[xxvii]

इससे ज्ञात होता है कि ये शस्त्र संचालन में दक्ष थी तथा अत्यधिक धैर्य से युक्त, साहसी तथा बुद्धिमती स्त्री थी। इन्हें अथर्व वंश में उत्पन्न धनदात्री स्त्री कहा गया है- **याभिर्विश्पलां धनसामर्थ्यं...........।**[xxviii]

- **सूर्या सावित्री**

ये सविता की पुत्री तथा अधिनीकुमारों की पत्नी हैं। ऋग्वेद के दशम मण्डल का 85 वां सूक्त इन्हीं को समर्पित है जिसमें अश्विनीकुमारों के साथ इनके विवाह का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

- **मुद्गलानी**

ये ऋषि मुद्रल की पतिव्रता, बुद्धिमती धर्मपत्नी थी जिन्होंने संग्राम क्षेत्र में रथारूढ़ होकर (सारथी बनकर) अपने पति मुद्गल की सहायता करके शत्रुओं के अधिकार क्षेत्र से हजारों गौओं को मुक्त कराया था। यथोक्तम्-
उत्स्म वातो वहति वासो अस्या अधिरथं यदजयत्सहस्रम्।
रथीरभून्मुद्रलानी गविष्टौ भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना।।[xxix]

इससे ज्ञात होता है कि ये रथसंचालन में कुशल थीं और पति को भी इन पर पूर्णविश्वास था। रामायण के अयोध्याकाण्ड में भी उल्लेख है कि कैकयी ने भी सारथी बनकर अपने घायल पति को रणभूमि से दूर ले जाकर उनकी रक्षा की थी। यथोक्तम्

अपवाहय त्वया देवि संग्रामान्नष्टचेतनः।
तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया।।[xxx]

- **गोधा ऋषिका**

ब्रह्मवादिनी गोधा भी तपोबलसमन्विता स्त्री है जो यज्ञसम्पादन के कार्यों में संलग्न रहते हुये, बिना किसी को हानि पहुंचाये धर्मयुक्त मर्यादित कर्मों का संपादन करती है।
यथोक्तम्- **नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि।**
पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि सं रभामहे ।[xxxi]**।**

तैतिरीय संहिता में '**गोधा**' शब्द पशुवाचक (नक्र या ग्राह) रूप में प्रयुक्त हुआ है।"[xxxii]

- **उर्वशी**

वायुपुराण में उर्वशी को भगवान नारायण के उरु भाग से उत्पन्न तथा स्वर्ग की ग्यारहवीं अप्सरा कहा गया है। वहाँ उसे ब्रह्मवादिनी एवं योगाभ्यास में सर्वदा निरत रहने वाली बताया गया है। यथोक्तम - **उरीः सर्वानवाद्यांगी उर्वश्येकादशी स्मृता ।**
अनादिनिधनस्याथ जज्ञे नारायणस्य या।
सर्वाश्व ब्रह्मवादिन्यो महायोगाश्च ताः स्मृताः।।"[xxxiii]

व्युत्पतिशास्त्र के अनुसार उर्वशी का अर्थ अप्सरा, उर्वभ्यश्नुते (अत्यन्त व्यापक), उरुभ्यामश्नुते (जाँघों के द्वारा व्यास करती है), उर्रुवा वशोऽस्या (अत्यधिक सामर्थ्ययुक्ता) उल्लिखित है। ऋग्वेद में ये ऋषिका और देवता दोनों रूपों में निर्दिष्ट है। अपने नाम को सार्थक करती हुयी वह इलापुत्र पुरुरवा के हृदय को वश में किये हुये है। चार वर्षों तक साथ-साथ रहने के पश्चात् उर्वशी पुरूरवा को छोड़कर पुनः स्वर्ग चली जाती है।" उसके विरह में व्यथित होकर पुरुरवा विलाप करता है। उसके हृदय में सदा ही उसकी स्मृति बनी रहती है क्योंकि सुदृढ़ अनुराग को छोड़ना बहुत ही कठिन है। बार-बार याद करने से दुःख फिर से नया हो जाता है। एक दिन अकस्मात् उर्वशी को देखकर वह उसके साथ पारस्परिक विचार-विमर्श द्वारा पुनः अपने गृह ले जाना चाहता है किंतु उर्वशी उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है।" उर्वशी कहती है कि- **जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत्पुरुरवो म ओजः।**
आशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्न म आश्रृणोः किमभुग्वदासि ।।"[xxxiv]

अर्थात् हे पुरुरवा। पृथ्वी के संरक्षण हेतु आपने पुत्र को जन्म दिया, मुझझमें गर्भ की स्थापना की। इस बात से परिचित होकर मैंने बार-बार आपसे मर्यादापालन हेतु कहा था परन्तु आपने मेरे कथन पर ध्यान नहीं दिया। आपने पारस्परिक स्नेह को भंग किया है. अब शोक करने से कोई लाभ नहीं है।' विष्णुपुराण में वर्णित है कि मित्रावरुण के शाप से उर्वशी को मर्त्यलोक में आना पड़ा।" पुरुरवा को अपने योग्य जानकर उर्वशी ने तीन अनुबन्धों के साथ उसके समीप रहना स्वीकार किया था। उसने कहा कि "मेरे पुत्ररूप इन दो मेषों को आप कभी मेरी शय्या से दूर नहीं करेंगे **(शयनसमीपे ममोरणकद्वयं पुत्रभूतं नापेनयम्),** मैं कभी आपको नग्न अवस्था में न देखें **(भवांश्च मया न नग्नो द्रष्टव्यः)** केवल घृत ही मेरा आहार होगा **(घृतमात्रं च ममाहार इति)**।[xxxv] और एक दिन राजा पुरुरवा को नग्नावस्था में देखकर प्रतिज्ञा भंग हो जाने के कारण उर्वशी वहाँ से चली गई" किन्तु पुरुरवा उसी में आसक्त होकर उसके विरह से व्यथित होकर स्वयं

को उसके बिना कुछ भी कर पाने में असमर्थ पाकर स्वयं की मृत्यु की कामना करता है। वह उसे अपने लिये सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाली मानता है।" उसके वचनों को सुनकर उर्वशी पुरुरवा को धैर्य का आश्रय लेने, आसक्ति का त्याग करने तथा उसके कल्याण की कामना करते हुये उन्हे मृत्यु पर विजय प्राप्त करने, सम्पदा का यज्ञीय उपयोग करने और स्वर्ग में जाकर सुख तथा आनन्द प्रास करने के लिये कहती है। वह कहती है कि स्त्रियों की मैत्री और स्नेह स्थायी नहीं होते,स्त्रियों और वृकों के हृदय समान होते हैं। ययोक्तम्

प्र तत्ते हिनवा यते अस्मे परोस्तं नहि मूर मापः ।।
पुरुरवो मा मृथा मा प्र पसो मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन्।
न वै स्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता।।
इति त्वा देवा इम आहुरैळ यथेमेतद्भवसि मृत्युबन्धुः।
प्रजा ते देवान्हविषा यजाति स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे।।[xxxvi]

यहाँ उर्वशी भले ही पुरुरवा को त्यागकर चली जाती है किन्तु उसके वचनों में पुरुरवा के प्रति मंगलकामना ही व्यक्त होती है। ऋग्वेद में यह कथा पूर्ण रूप में नहीं है किन्तु विष्णु पुराण, मत्स्यपुराण", शतपथ ब्राह्मण आदि में यह कथा विस्तृत रूप में प्राप्त होती है। ऋग्वेद में उर्वशी का पुरुरवा को त्यागने का कारण वर्णित नहीं है किन्तु उन दोनों की वार्ता से लोकोपयोगी यह तथ्य प्रकट होता है कि जीवन अत्यन्त महत्वपूर्ण है, चाहे परिस्थिति
आपकी अपेक्षानुरूप हो अथवा न हो। मनुष्य का किसी भी पदार्थ या व्यक्ति के प्रति आसक्ति का भाव उसे अपने कर्तव्यमार्ग से च्युत करके नैराश्य और अवसाद में निमग्न कर देता है। उसकी अन्यमनस्कता तथा किंकर्तव्यविमूढता जीवन के कल्याण मार्ग को अवरुद्ध कर देती है। अतः प्रत्येक मनुष्य को आत्मगुणों का अवलम्बन कर जीवन को सार्थक बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।
निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि वैदिककालीन स्त्रियों का चरित्र अत्यन्त प्रेरणास्पद और प्रभावोत्पादक है। ये सभी तपोबल से युक्त थीं और स्वधर्मपालनरता थीं। इसी प्रकार अन्य वैदिक स्त्रियों और ऋषिकाएँ भी है। यथा ममता, शश्वती, इन्द्राणी, जुहू ब्रह्मजाया, अदिति, पौलोमी, श्रद्धाकामायनी इत्यादि जिन्होंने परिवार समाज के कल्याण के लिये ऋषियों को करणीय कर्म करने का उपदेश दिया है।

[xxxvii]**सन्दर्भ ग्रन्थ**

---

[i] मनुस्मृति
[ii] ऋग्वेद संहिता,प्रथम मंडल,पृ.272
[iii] ऋग्वेद संहिता,1/179/1
[iv] ऋग्वेद संहिता,1/179/2
[v] ऋग्वेद संहिता,1/179/4
[vi] बृहदेवता,4/60
[vii] ऋग्वेद संहिता.पृ.सं.194
[viii] ऋग्वेद संहिता,1/126/6
[ix] ऐतरेय आरण्यक,पृ.सं.81-82
[xi] ऋग्वेद संहिता,5/61/5
[xii] ऋग्वेद संहिता,5/61/7-8
[xiii] संस्कृत निबन्ध मन्दाकिनी,पृ.सं.-67

[xiv] मनुस्मृति,11/87
[xv] ऋग्वेद संहिता,5/28/3
[xvi] तैत्तरेय ब्राह्मण,3/7/7/11
[xvii] ऋग्वेद संहिता8/91/5
[xviii] ऋग्वेद संहिता,8/91/7
[xix] बृहदेवता,6/105-106
[xx] ऋग्वेद संहिता,10/10/1
[xxi] ऋग्वेद संहिता,10/10/3,5,11
[xxii] ऋग्वेद संहिता, 10/10/12
[xxiii] मनुस्मृति,2/214
[xxiv] बृहदेवता,7/42-45
[xxv] ऋग्वेद संहिता,10/39/6
[xxvi] ऋग्वेद संहिता,10/40/11-13
[xxvii] वैदिक साहित्य एवं संस्कृति,पृ.सं.-260
[xxviii] ऋग्वेद संहिता,1/112/10
[xxix] ऋग्वेद संहिता,10/102/2
[xxx] वाल्मिकी रामायण,2/9/162
[xxxi] ऋग्वेद संहिता,10/134/6
[xxxii] तैत्तिरीय संहिता,5/5/15
[xxxiii] वायुपुराणम्,69/51-52
[xxxiv] ऋग्वेद संहिता,10/95/11
[xxxv] श्री विष्णुपुराण,6/40-47
[xxxvi] ऋग्वेद संहिता,10/95/13,15,18